दासबोध

श्रीसमर्थ रामदासस्वामी-कृत

मराठी का हिन्दी अनुवाद

प्रकाशक और मुद्रक
शंकर नरहर जोशी।
चित्रशाला स्टीम प्रेस, १०२९ सदाशिव पेठ,
पूना सिटी।

(चौथी बार)

सम्वत् १९८६ विक्रमी—ई० स० १९३०

मूल्य २॥रुपया

सर्वाधिकार प्रकाशक के स्वाधीन हैं।

अनुक्रमणिका।

समास — पृष्ठ

पहला दशक।

१ ग्रन्थारम्भ-निरूपण ... १
२ गणेशस्तुति ... ३
३ शारदास्तुति ... ५
४ सद्गुरु-स्तुति ... ७
५ सन्तस्तुति ... ९
६ श्रोताओं की स्तुति ... १०
७ कवीश्वर-स्तुति ... १२
८ सभा-स्तुति ... १४
९ परमार्थ-स्तुति ... १५
१० नरदेह की स्तुति ... १७

दूसरा दशक।

१ मूर्ख-लक्षण ... २१
२ उत्तम लक्षण ... २५
३ कुविद्या-लक्षण ... २७
४ भक्ति-निरूपण ... ३०
५ रजोगुण-निरूपण ... ३१
६ तमोगुण-निरूपण ... ३४
७ सतोगुण-निरूपण ... ३६
८ सद्विद्या-निरूपण ... ४१
९ विरक्त-लक्षण ... ४४
१० पढ़तमूर्ख के लक्षण ... ४६

तीसरा दशक।

१ जन्म-दुःख-निरूपण ... ५०
२ स्वगुण-परीक्षा (बालपन और युवावस्था) ... ५३
३ स्वगुण-परीक्षा (दूसरे विवाह से दुर्दशा और सन्तानोत्पत्ति) ... ५७
४ स्वगुण-परीक्षा (गृहस्थी के संकटों के कारण परदेश जाना) ... ६०
५ स्वगुण-परीक्षा (तीसरे विवाह से संकट और बुढ़ापे के दुःख) ... ६३
६ आध्यात्मिक ताप (शारीरिक और मानसिक रोग) ... ६६
७ आधिभौतिक ताप (चराचर भूतों से दुःख मिलना) ... ६९
८ आधिदैविक ताप (यम-यातनाएं) ... ७४
९ मृत्यु-निरूपण (मृत्यु से कोई नहीं बचता) ... ७६
१० वैराग्य-निरूपण ... ७९

चौथा दशक।

१ श्रवणभक्ति ... ८५
२ कीर्तनभक्ति ... ८७
३ स्मरणभक्ति ... ८९
४ पादसेवनभक्ति ... ९१
५ अर्चनभक्ति ... ९३
६ वन्दनभक्ति ... ९५
७ दास्यभक्ति ... ९७
८ सख्यभक्ति ... ९८
९ आत्मनिवेदनभक्ति ... १०१
१० सृष्टिवर्णन और मुक्तिचतुष्टय ... १०३

पाँचवाँ दशक।

१ गुरुनिश्चय (सद्गुरु-सेवा के बिना मोक्ष नहीं) ... १०६
२ सद्गुरु-लक्षण ... १०९
३ शिष्य-लक्षण ... ११३
४ मंत्र-लक्षण ... १२०
५ बहुधा ज्ञान ... १२२
६ शुद्ध ज्ञान का निरूपण ... १२५
७ बद्ध-लक्षण ... १२९
८ मुमुक्षु-लक्षण ... १३२
९ साधक-लक्षण ... १३४
१० सिद्ध-लक्षण ... १३८

छठवाँ दशक।

१ परमात्मा की पहचान ... १४२
२ परमात्मा की प्राप्ति ... १४४
३ माया की उत्पत्ति ... १४७
४ माया का विस्तार ... १५०

समास	पृष्ठ
५ माया और ब्रह्म	... १५१
६ सत्य देव का निरूपण	... १५३
७ सगुण-भजन	... १५७
८ दृश्य का मिथ्याभास	... १६०
९ गुप्त परमात्मा की खोज	... १६३
१० अनुभव अकथनीय है	... १६५
सातवा दशक।	
१ माया की खोज	... १७०
२ ब्रह्म-निरूपण	... १७४
३ चौदह मायिक ब्रह्म	... १७७
४ केवल ब्रह्म	... १८१
५ द्वैतकल्पना का निरसन	... १८४
६ मुक्त कौन है?	... १८७
७ साधन का निश्चय	... १९१
८ श्रवण-महिमा	... १९६
९ श्रवण का निश्चय	... १९९
१० जीवन्मुक्त का देहान्त	... २०२
आठवाँ दशक।	
१ परमात्मा का निश्चय	... २०६
२ माया के अस्तित्व में शंका	... २०९
३ निर्गुण में माया कैसे हुई?	... २१३
४ सूक्ष्म पंचमहाभूत	... २१७
५ स्थूल पंचमहाभूत	... २२१
६ सत्संग और मोक्ष	... २२५
७ मोक्ष-लक्षण	... २२८
८ परमात्मा का दर्शन	... २३२
९ साधु-लक्षण	... २३६
१० बहुधा अनुभव	... २४०
नववाँ दशक।	
१ ब्रह्म-निरूपण	... २४६
२ आत्मज्ञान	... २४७
३ ज्ञानी का जन्म-मरण नहीं	... २५०
४ अजान और सुजान	... २५३
५ पिण्ड और ब्रह्माण्ड	... २५६
६ पंचभूत और त्रिगुण	... २५८
७ विकल्प-निरसन	... २६२
८ बद्ध का पुनर्जन्म	... २६५

समास	पृष्ठ
९ ब्रह्म में ब्रह्माण्ड	... २६८
१० आत्म-स्थिति	... २७१
दसवाँ दशक।	
१ अन्तःकरण एक है	... २७४
२ उत्पत्ति के विषय में शंका	... २७६
३ सृष्टि की उत्पत्ति	... २७७
४ उत्पत्ति का विस्तार	... २७९
५ पंचप्रलय	... २८२
६ भ्रम-निरूपण	... २८३
७ साधु चमत्कार नहीं करते	... २८६
८ प्रतीति-निरूपण	... २८८
९ पुरुष और प्रकृति	... २९०
१० निश्चल और चंचल	... २९२
ग्यारहवाँ दशक।	
१ सिद्धान्त-निरूपण	... २९७
२ सृष्टिक्रम	... ३००
३ सांसारिक उपदेश	... ३०२
४ सद्विचार	... ३०४
५ राजनैतिक दाँवपेंच	... ३०६
६ महन्त के लक्षण	... ३०८
७ मायारूपी चंचल नदी	... ३०९
८ अन्तरात्मा का निरूपण	... ३११
९ ज्ञानोपदेश	... ३१३
१० निस्पृह का बर्ताव	... ३१४
बारहवाँ दशक।	
१ विमल लक्षण	... ३१७
२ संसार का अनुभव	... ३१८
३ ईश्वर और भक्त	... ३२०
४ विवेक-वैराग्य	... ३२२
५ त्रिविध आत्मनिवेदन	... ३२४
६ उत्पत्ति का क्रम	... ३२५
७ विषय-त्याग	... ३२७
८ काल का रूप	... ३२९
९ प्रयत्न का उपदेश	... ३३१
१० उत्तम पुरुष	... ३३३
तेरहवाँ दशक।	
१ आत्मानात्म-विवेक	... ३३६

समास	पृष्ठ
२ सारासारविचार	... ३३८
३ उत्पत्ति-निरूपण	... ३३९
४ प्रलय-निरूपण	... ३४१
५ सृष्टि की कहानी	... ३४२
६ लघुबोध	... ३४४
७ अनुभव का विचार	... ३४६
८ कर्ता कौन है?	... ३४८
९ आत्मा का सुख-दुख-भोग	... ३५०
१० उपदेश-निरूपण	... ३५२
चौदहवाँ दशक।	
१ निस्पृह-लक्षण	... ३५५
२ भिक्षा-निरूपण	... ३५९
३ काव्य-कला	... ३६१
४ कीर्तन-लक्षण	... ३६४
५ हरिकथा की रीति	... ३६६
६ चातुर्य-लक्षण	... ३६९
७ कलियुग का धर्म	... ३७१
८ अखण्ड ध्यान	... ३७३
९ शाश्वत निरूपण	... ३७७
१० माया मिथ्या है	... ३७९
पन्द्रहवाँ दशक।	
१ चतुर का बर्ताव	... ३८१
२ निस्पृह का काम	... ३८३
३ ज्ञान की श्रेष्ठता	... ३८५
४ ब्रह्मनिरूपण	... ३८७
५ चंचल के लक्षण	... ३८८
६ विशिष्ट चातुर्य	... ३९२
७ अधोर्ध्व-लक्षण	... ३९४
८ सूक्ष्म-जीव-निरूपण	... ३९७
९ पिंड की उत्पत्ति	... ३९९
१० सिद्धान्त-निरूपण	... ४०१
सोलहवाँ दशक।	
१ वाल्मीकि-स्तुति	... ४०४
२ सूर्य-स्तुति	... ४०५
३ पृथ्वी-स्तुति	... ४०६
४ जल-स्तुति	... ४०८
५ अग्नि-स्तुति	... ४१०

समास	पृष्ठ
६ वायु-स्तुति	... ४१२
७ महद्भूत-निरूपण	... ४१४
८ आत्माराम-निरूपण	... ४१६
९ उपासना-निरूपण	... ४१८
१० त्रिगुण और पंचभूत	... ४२०
सत्रहवाँ दशक।	
१ अन्तरात्मा की सेवा	... ४२२
२ शिव-शक्ति-निरूपण	... ४२४
३ अध्यात्म-श्रवण	... ४२६
४ संशय मिटाओ	... ४२८
५ अजपा-निरूपण	... ४३०
६ देही और देह	... ४३२
७ संसार की गति	... ४३४
८ पंचीकरण और देह-चतुष्टय	... ४३५
९ तनु-चतुष्टय	... ४३७
१० साधु और मूर्ख	... ४३९
अठारहवाँ दशक।	
१ विविध देवता	... ४४१
२ ज्ञाता का समागम	... ४४२
३ सदुपदेश	... ४४४
४ नरदेह का महत्त्व	... ४४५
५ समाधान की युक्ति	... ४४८
६ दिव्य गुणों का उपदेश	... ४५०
७ लोगों का स्वभाव	... ४५१
८ अन्तर्देव-निरूपण	... ४५३
९ निद्रा-निरूपण	... ४५४
१० श्रवण-विक्षेप	... ४५६
उन्नीसवाँ दशक।	
१ लेखन-कौशल	... ४६०
२ चतुरता का बर्ताव	... ४६१
३ अभागी के लक्षण	... ४६३
४ भाग्यवान् के लक्षण	... ४६५
५ देह की उपयोगिता	... ४६७
६ बुद्धिवाद	... ४६८
७ प्रयत्नवाद	... ४७०
८ उपाधि-निरूपण	... ४७३
९ राजनीति का व्यवहार	... ४७४

समास	पृष्ठ
१० विवेक का बर्ताव	... ४७७

बीसवाँ दशक ।

समास	पृष्ठ
१ पूर्ण और अपूर्ण	... ४७९
२ त्रिविधा सृष्टि	... ४८०
३ सूक्ष्म विचार	... ४८२
४ आत्मा का निरूपण	... ४८४
५ पदार्थ-चतुष्टय	... ४८६
६ आत्मा के गुण	... ४८८
७ आत्मविवेक	... ४८९
८ शरीररूपी क्षेत्र	... ४९१
९ सूक्ष्म-निरूपण	... ४९३
१० पूर्णब्रह्म-निरूपण	... ४९५

समर्थ का निर्याण।

शाके १६०३ (सन् १६८१) के रामनवमी-उत्सव पर समर्थ चाफले को गये और वहाँ मन्दिर में अपने प्रिय उपास्य देव श्रीराम के दर्शन किये और हनुमान्‌जी की आज्ञा लेकर, शिविकारूढ़ हो, सज्जनगढ़ को लौट आये। अन्तकाल समीप जान कर कई दिन पहले से उन्होंने अन्न का त्याग कर दिया, केवल दूध पीकर रहने लगे। उस समय यद्यपि उनका तेज बढ़ता जाता था; तथापि शरीर-क्षीणता बढ़ती ही जाती थी। इस प्रकार कुछ दिनों के बाद माघ-कृष्ण-अष्टमी का दिन आ पहुँचा। उस दिन समर्थ की इच्छा हुई कि, अब इस बात की परीक्षा करना चाहिए कि, हमारे शिष्यों में से किसीको हमारा अन्तिम दिन मालूम है या नहीं। इसी विचार से उन्होंने अपने सब शिष्यों के सामने यह अर्धश्लोक पढ़ाः—

रघुकुलतिलकाचा वेळ सन्नीध आला।
तदुपरि भजनानें पाहिजे सांग केला॥

रघुकुल-तिलक का समय निकट आ गया है, इस लिए अब सांगोपांग भजन करना चाहिए। यह सुन कर उद्धवस्वामी ने तुरंत ही उस श्लोक की पूर्ति इस प्रकार कीः—

अनुदिन नवमी हे मानसीं आठवावी।
बहुत लगबगीनें कार्य-सिद्धी करावी॥

अन्तिम दिन नवमी का स्मरण रखना चाहिए और बड़ी शीघ्रता से कार्य-सिद्धि करनी चाहिए। यह श्लोकार्ध सुन कर समर्थ बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सब भजन (भक्ति-पद-गान) करने की आज्ञा दी। अष्टमी के दिन रात भर भजन की धूम मची रही। सब शिष्य जमा हुए। नवमी का दिन आया। उस दिन समर्थ स्वयं पलँग से नीचे उतर कर बैठ गये। उस समय उन्होंने, शिष्यों के बहुत आग्रह करने पर, कुछ मिश्री और दाख खाकर, थोड़ा सा निर्मल जल पान किया। थोड़ी देर के बाद शिष्यों ने पलँग पर बैठने के लिए उनसे प्रार्थना की। समर्थ ने कहा, "मुझे, पलँग पर उठा कर, रक्खो।" यह आज्ञा पाकर उद्धवस्वामी उन्हें उठाने लगे; पर वे उनसे नहीं उठ सके। यह देख कर आकाबाई नामक समर्थ की शिष्या भी उद्धवस्वामी के साथ उन्हें उठाने लगीं; पर तब भी वे नहीं उठे। अन्त में करीब दस मनुष्य मिल कर उन्हें उठाने का प्रयत्न करने लगे पर विकल हुए। इसके बाद समर्थ ने सब के अलग होने की आज्ञा दी। लोगों के हटने पर जब वे वायु आकर्षण करने लगे तब सब शिष्य चिल्ला चिल्ला कर रोने लगे। समर्थ ने उन सब से कहा, "आज तक हमारे पास रह कर क्या रोना ही सीखे हो?" शिष्यों ने कहा, "सगुण मूर्ति जाती है; अब भजन किसके साथ करेंगे और बोलने की इच्छा होने पर, किससे बोलेंगे?" समर्थ ने अन्तिम उत्तर दिया, "जो मेरे पीछे मुझसे बोलना चाहे वह

" दासबोध " आदि हमारे ग्रन्थ पढ़े। उन्हें पढ़ना मानो प्रत्यक्ष मुझसे बात-चीत करना है।" इतना कह कर ग्यारह बार " हर हर " शब्द का उच्चारण किया और अन्त में " राम " शब्द के उच्चारण करते ही समर्थ के मुख से तेज निकल कर, समीप स्थापित की हुई राममूर्ति के मुख में, प्रविष्ट हो गया! भजन बराबर हो रहा था। उस समय भजन की ध्वनि और बढ़ गई। इस प्रकार शाके १६०३ (सन् १६८२ ई० के फरवरी में) माघ कृष्ण ९ के दिन (संवत् १७३८ फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की नवमी को) महाराष्ट्र-प्रान्त का एकमात्र सिद्धरत्न, साधुराज, चातुर्यसागर, राजनीतिज्ञ-शिरोमणि, भक्ति-ज्ञान, वैराग्य का प्रत्यक्ष स्वरूप और निस्पृह महात्मा ' राम ' में लीन हो गया! और 'दासबोध' में अनेक स्थानों में कहे हुए अपने इस वाक्य को अक्षरशः सत्य कर गया किः-

.... । हरिभकीस सादर व्हावें ।
मरोन कीर्तीस उरवावें ।................ ॥ १३ ॥

द० १२ स० २०

" सदा हरिभक्ति में तत्पर रहना चाहिए और मरने के बाद कीर्तिरूप से सदा जगत में जीवित रहना चाहिए।" हे सद्गुरु समर्थ! आप अपने इसी वचन के अनुसार कीर्ति-रूप से-और आत्मस्वरूप से भी—अमर हैं। केवल आप ही अमर नहीं हैं; किन्तु असंख्य लोगों को आप अपने आदर्श से अमर कर चुके हैं, अमर कर रहे हैं और अमर करेंगे। जब तक इस आर्यावर्त में धर्म का नाम है—जब तक हिन्दुओं को ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास है; और जब तक इस पवित्र भूमि में " महाराष्ट्र " के नाम पर भारतवासियों को अभिमान है तब तक आप और आपका उपदेश, इस पृथ्वी पर, अटल, अचल और अमर है।

समर्थ और शिवाजी।

गत संख्या में इस बात का उल्लेख किया गया है कि शिवाजी ने श्रीरामदासस्वामी को अपना गुरु बनाया था, और यह भी कहा गया है कि इनका परस्पर सम्बंध बहुत गहन और महत्त्व का है। कुछ आधुनिक लेखकों में, इन दो व्यक्तियों के ऐतिहासिक सम्बंध में कुछ मतभेद है। यद्यपि यह बात सर्वमान्य है कि रामदासस्वामी शिवाजी के गुरु थे, उनकी आज्ञा पालन करना शिवाजी अपना परम धर्म समझते थे, तथापि दोनों की भेंट कब और किस स्थान में हुई, शिवाजी ने उपदेशमंत्र किस समय लिया, गुरु और शिष्य का पर-स्पर बर्ताव कैसा था, शिवाजी किन किन बातों में अपने गुरु से सलाह लिया करते थे, स्वधर्म और स्वराज्यस्थापन के महत्कार्य में समर्थ की कितनी और किस प्रकार की सहायता थी, इत्यादि कुछ प्रश्नों के विषय में कुछ थोड़ा मतभेद पाया जाता है। अधिकांश विद्वानों की राय देखने से जान पड़ता है कि ये प्रश्न बहुत शीघ्र हल हो जायँगे। महाराष्ट्र की ऐति-हासिक सामग्री की खोज और जाँच करनेवाले विख्यात प्रोफ़ेसर राजवाड़े इस विषय में

कहते हैं—" सिद्ध बात को सिद्ध करने का यत्न करने से कोई लाभ नहीं होता। जब तक " दासबोध " ग्रंथ विद्यमान रहेगा और जब तक इतिहास में यह बात लिखी रहेगी कि मरहठों ने सत्रहवीं सदी में स्वतंत्र राज्यस्थापित किया था तब तक श्रीरामदास और शिव छत्रपति का सम्बन्ध फिर से सिद्ध करने की आवश्यकता, उन लोगों के सिवा जिनका चित्त अव्यवस्थित है (दिमाग़ बिगड़ गया है), और किसीको भी मालूम न होगी।" धुलिया की सत्कार्योत्तेजक सभा ने श्रीरामदास और शिवाजी के सम्बन्ध में बहुत सी ऐतिहासिक बातें प्रकाशित की हैं और वह इस विषय की खोज कर रही है। वह श्रीरामदासस्वामी का बृहत् चरित्र, ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर और आधुनिक विवेचनपद्धति के अनुसार, थोड़े ही दिनों में प्रकाशित करनेवाली है। आशा है कि हिन्दीवालों को भी उक्त चरित्र से कुछ लाभ अवश्य होगा।

जिस समय श्रीरामदासस्वामी लोकोद्धार करने के लिए कृष्णा नदी के किनारे पहुँच कर चाफल में निवास करने लगे उस समय वहाँ नरसोमलनाथ नाम के तहसीलदार रहते थे। उन्होंने समर्थ की योग्यता जान कर उनसे मंत्रोपदेश लिया। कुछ ही दिनों में वहाँ रामदासी संप्रदाय की बहुत वृद्धि होने लगी। धीरे धीरे यह समाचार शिवाजी को मालूम हुआ। उस समय शिवाजी की राजसत्ता महाराष्ट्र में खूब बढ़ रही थी। उन्होंने रायगढ़ का क़िला ले लिया था; प्रतापगढ़ में एक नया क़िला बनवा कर वहाँ भवानी देवी की मूर्ति स्थापित की थी। उन्होंने पूना को मुख्य स्थान बना कर, नासिक से करवीर तक का सारा प्रान्त, कोंकण का कुछ भाग जीत लिया था। यद्यपि इस प्रकार वे राज्यसम्पादन के कार्य में लगे थे तोभी संत-समागम की उन्हें विशेष रुचि थी। बालपन ही से साधु और संतजनों के विषय में पूज्यभाव होने के कारण वे साधुसमागम के लिए सदा उत्कण्ठित रहते थे। वे अपना राजकाज करते हुए भी चिंचवड, देहू, आलंदी आदि प्रसिद्ध स्थानों में साधुजनों के दर्शन को बार-बार जाया करते थे और उनका उपदेश श्रद्धायुक्त अन्तःकरण से सुनते थे। जहाँ जहाँ हरिभजन या कीर्तन होता था वहाँ वहाँ वे अवश्य जाते थे। उनकी माता जिजाबाई ने उन्हें छोटेपन ही में अपने सनातनधर्म, शास्त्र, वेद, पुराण और वेदान्त आदि के गम्भीर तत्त्व और सिद्धान्त तथा शिक्षादायक कथाओं की शिक्षा दिलाई थी। इसलिए अपनी माता की शिक्षा और साधु-समागम के कारण उनके मन में अपने जीवन की सार्थकता के विषय में अनेक उच्च विचार भर गये थे। वे सदा इसी बात का चिन्तन करते रहते थे कि; जीवन की सार्थकता उत्तम रीति से कैसे की जाय। उन्होंने एक बार सुप्रसिद्ध साधु तुकाराम बाबा से मंत्रोपदेश माँगा था; पर उन्होंने शिवाजी को श्रीरामदासस्वामी के शरण में जाने की आज्ञा दी। इस प्रकार मन की मुमुक्षावस्था में जब शिवाजी ने श्रीसमर्थ की साधुकीर्ति सुनी तब उन्हें उनके दर्शन की बहुत अभिलाषा हुई। इसलिए उन्होंने श्रीसमर्थ को एक पत्र भेज कर अपनी राजधानी में बुलाया। परन्तु समर्थ वहाँ नहीं गये। उन्होंने शिवाजी के पत्र का उत्तर भेज दिया।

जिस पत्र का उल्लेख किया है वह इतिहास-दृष्टि से बहुत महत्त्व का है। उसमें शिवाजी को समर्थ ने जो उपदेश किया है। वह ध्यान में रखने योग्य है। इसलिए उस पत्र के कुछ अंश का भावार्थ यहाँ देना आवश्यक है। समर्थ शिवाजी को लिखते हैं:— "इस समय भूमंडल में ऐसा कोई नहीं है जो धर्म की रक्षा करे। महाराष्ट्र-धर्म तुम्हारे ही कारण बचा है। यहाँ जो कुछ थोड़ा-बहुत धर्म देख पड़ता है और साधुजनों की रक्षा हो रही है वह सब तुम्हारे ही कारण है। तुम धन्य हो। तुमने दुष्टजनों का संहार किया है। वे लोग तुमसे डरते हैं। बहुतेरे जन तुम्हारे आश्रय में रहने लगे हैं। अब तुमको धर्मस्थापन का काम सम्हालना चाहिए। यह बात सच है कि तुमको राजकाज बहुत करना पड़ता है जिससे चित्तवृत्ति व्यग्र हो जाती है। ऐसी दशा में राजा और मंत्री का विचार एक होना चाहिए। यदि एकता न होगी तो कार्य-नाश होगा। सब लोगों को राज़ी रखना; भले बुरे की खूब जाँच करना; न्याय और नीति का कदापि त्याग न करना, लालच में कभी न फँसना, सदा सावधान रहना। हमारा बोलना स्पष्ट है इसलिए क्रोध न आने देना। जो कुछ हमने कहा है उसे उचित रीति से श्रवण करना। यदि सचमुच अंतःकरणपूर्वक काम करना हो तो हमारे बतलाये हुए मार्ग को स्वीकार करो, श्रीरामचन्द्रजी कृपा करेंगे; तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा; तुम्हारे सारे मनोरथ पूर्ण होंगे। इस विषय में सन्देह बिलकुल मत करना।" यह पत्र पढ़ कर शिवाजी के धार्मिक और निष्ठायुक्त अन्तःकरण में श्रीरामदासस्वामी के दर्शन की उत्कंठा और भी तीव्र होगई। तब वे अपने संग कुछ आदमी लेकर समर्थ के दर्शन को चाफल गये। परन्तु, समर्थ का दर्शन न हुआ; क्योंकि वे एक स्थान में न रह कर चाफल के आस-पास कृष्णा नदी के किनारे जंगल, दरी और खोरियों में विचरते रहते थे। महीपति ने अपने "संतविजय" में लिखा है कि इस प्रकार शिवाजी महाराज को कई बार निराश होना पड़ा। तोभी उन्होंने यत्न करना न छोड़ा। अन्त में एक दिन वे यह निश्चय करके घर से निकले कि जब तक समर्थ का दर्शन न होगा और उनका प्रसाद न मिलेगा तब तक भोजन न करूँगा। इस तरह दृढ़ निश्चय करके, समर्थ का पता लगाते हुए, चाफल के जंगल में भटकते-भटकते जब बहुत विह्वल और आर्त होगये तब समर्थ के एक शिष्य-द्वारा उन्हें पता लगा कि समर्थ खड़ी के बाग़ में हैं। शिवाजी ने वहाँ जाकर दर्शन किया। दोनों की प्रेमपूर्ण वार्ता हुई। शाके १५७१, वैशाख शु० ९ के गुरुवार के दिन समर्थ ने शिवाजी को उपदेश-मंत्र दिया और 'दासबोध' के तेरहवें दशक का 'लघुबोध' नामक छठवाँ समास अद्वैत ज्ञान बताने के लिए सुनाया।

यह बात ऊपर कही गई है कि समर्थ एक स्थान में बहुत समय तक न रहते थे। कभी चाफल के मठ में रहते थे, कभी कृष्णा नदी के किनारे वन, पर्वतों की झाड़ियों में रहते थे और कभी देशपर्यटन या तीर्थयात्रा करने को चले जाते थे। इस कारण शिवाजी अपने गुरु का दर्शन नित्य नियमपूर्वक नहीं कर सकते थे। उनकी यही इच्छा

थी कि समर्थ अपने समीप किसी स्थान में रहें तो नित्य समागम का लाभ हो। उन्होंने कई बार प्रार्थना भी की, पर समर्थ ने विशेष ध्यान न दिया। तब शिवाजी ने एक पत्र भेजा जिसमें भिन्न भिन्न अनेक प्रसंगों का उल्लेख है। यह पत्र समर्थ और शिवाजी के पारस्परिक सम्बन्ध का ऐतिहासिक प्रमाण है। इस पत्र से जो बातें प्रकट होती हैं उनका कुछ सारांश नीचे दिया जाता है। इस पत्र से, पढ़नेवाले स्वयं निश्चय कर लेंगे कि समर्थ और शिवाजी का कैसा घना सम्बन्ध था:—

"श्रीसमर्थ ने शिवाजी को उपदेशमंत्र देकर यह आज्ञा दी थी कि "तुम्हारा मुख्य धर्म राज्यसम्पादन करके धर्मस्थापना करना, देव और ब्राह्मणों की सेवा करना, प्रजा की पीड़ा दूर करके उसका पालन और रक्षा करना है।" उसी समय समर्थ ने यह आशीर्वाद भी दिया था कि "तुम्हारे मन में जो इच्छा होगी वह सब पूर्ण होगी।" इस आज्ञा के अनुसार शिवाजी राज्य-सम्पादन का जो उद्योग किया वह सफल हुआ और उनका मनोरथ "स्वामी" के "आशीर्वाद के प्रताप" से पूर्ण हुआ। शिवाजी का यह विश्वास दृढ़ था कि "दुष्ट, दुरात्मा जनों का नाश और विपुल द्रव्य-प्राप्ति" श्रीगुरुचरणों के प्रताप ही का फल है। ऐसे समर्थ सद्‌गुरु रामदासस्वामी के चरण-कमलों में अपना सारा राज अर्पण करके शिवाजी ने यह इच्छा की थी कि, नित्य गुरुचरणों की सेवा करने का अवसर मिलना चाहिए। उस समय समर्थ ने यही कहा कि "हमारे पहले बताये हुए धर्म के अनुसार बर्ताव करना ही सेवकाई है।" इसके बाद शिवाजी ने यह प्रार्थना की कि स्वामी किसी निकट के स्थान में रहें तो बार बार दर्शन का लाभ होगा और किसी स्थान में श्रीराम की मूर्ति स्थापित करके मठ का प्रबन्ध किया जाय तो सम्प्रदाय की वृद्धि होगी। इसके अनुसार समर्थ ने चाफल में श्रीराम की स्थापना तो की; परन्तु "स्वयं आस-पास के गिरिगह्वरों में ही रहा करते थे।" इसके बाद शिवाजी ने यह प्रार्थना की:—"श्रीराम की पूजा महोत्सव आदि धर्मकृत्य सांगोपांग करने के लिए कितने गाँव नियत किये जावें सो आज्ञा दीजिए।" इस पर समर्थ ने कहा, "किसी विशेष उपाधि की आवश्यकता नहीं है। यदि श्रीराम की सेवा करने का तुम्हारा निश्चय ही है तो यथावकाश जो कुछ नियत करने की इच्छा हो सो करो।" तब शिवाजी ने श्रीसमर्थ-संप्रदाय की सेवा करने के हेतु गाँव और भूमि-दान की सनद लिख कर समर्थ को भेज दी और यह निवेदन किया कि, श्रीराम का उत्सव सदा करते रहने की मुझे आज्ञा दीजिए।" शिवाजी का बहुत आग्रह देख कर समर्थ सितारा के पास सज्जनगढ़ के क़िले में रहने लगे। शिवाजी ने वहाँ एक मठ बनवा दिया।

शिवाजी और समर्थ के सम्बन्ध में जितनी बातें लिखी जाँय सब थोड़ी ही होंगी। अब सिर्फ़ तीन और बातों का उल्लेख करके यह विषय समाप्त करेंगे।

एक दिन समर्थ माहुली-संगम पर स्नान, संध्या करके भिक्षा माँगते हुए सितारे में शिवाजी के महल में गये और "जय जय श्रीरघुवीर समर्थ" की गर्जना करके भिक्षा

माँगी । समर्थ की वाणी सुनते ही शिवाजी का हृदय गद्गद हो गया । वे विचार करने लगे कि ऐसे सत्पात्र सद्गुरु की झोली में क्या भिक्षा डाली जाय । तुरन्त ही उन्होंने एक काग़ज़ पर यह लिखा कि " श्रीसमर्थ के चरणों में सब राज्य अर्पण कर दिया " इस पत्र पर मोहर करके वे बाहर आये और वह पत्र समर्थ की झोली में डाल कर साष्टांग दंडवत् किया । यह देख कर समर्थ ने पूछा " क्यों शिवबा, यह कैसी भिक्षा डाली ? मुट्ठी भर चावल झोली में डाले होते तो दोपहर का समय कटता ! आज क्या काग़ज़ का टुकड़ा ही समर्पण करके हमारा आतिथ्य करते हो ? " इतना कह कर जब उन्होंने वह काग़ज़ निकाल कर पढ़ा तब मालूम हुआ कि शिवाजी ने अपना सब राज्य अर्पण कर दिया है । समर्थ ने शिवाजी से पूछा " क्यों शिवबा, राज्य तो तुमने हमको दे दिया, अब तुम क्या करोगे ? " शिवाजी ने हाथ जोड़ कर विनती की, " आपकी चरण-सेवा में रह कर समय व्यतीत करेंगे । " यह सुन कर समर्थ हँसे और कहा, " बाबा ! जो जिसका काम है वह उसीको करना उचित है । ब्राह्मणों को जप-तप करके ज्ञान सम्पादन करना चाहिए और क्षत्रियों को क्षात्रधर्म ही का पालन करना चाहिए । इस प्रकार अपना अपना कर्तव्य करते रहने से ही मोक्ष-प्राप्ति होती है । अपना अपना कर्म यथोचित रीति से पूर्ण करने ही में जन्म की सार्थकता है । पूर्व समय में रामचन्द्र ने भी अपने कुलगुरु वसिष्ठ को आधा राज्य अर्पण कर दिया था । उस समय वसिष्ठजी ने श्रीराम को योगवासिष्ठरूप से नीति, न्याय और धर्म का उपदेश किया । और उनका राज्य उन्हें लौटा दिया । राजा जनक ने भी याज्ञवल्क्य को राज्य अर्पण किया था । उस समय उन्होंने जनक को राजधर्म का उपदेश किया । शिवबा ! हम वैरागियों को राज्य की क्या ज़रूरत है ? कदाचित् हमने अंगीकार भी कर लिया तो उसके सँभालने के लिए प्रधान की जरूरत है । प्रधान तूही बन; और राज्य हमारा समझ कर उसका प्रबन्ध कर " यह उपदेश सुनते ही शिवाजी का अन्तःकरण गद्गद हो गया । जब उन्होंने समझा कि, अब विना राज्य लौटा लिये और कोई उपाय नहीं है तब उन्होंने समर्थ से प्रार्थना की:—" अब कृपापूर्वक आप अपनी पादुका मुझे दीजिए । उन्हींको स्थापन करके मैं आपके प्रधान की तरह राजकाज करूँ गा । " समर्थ ने यह प्रार्थना स्वीकार की । उसी समय से शिवाजी महाराज ने अपने राज की निशानी, अर्थात् झंडा भी भगवे रंग का कर दिया । मराठों का " भगवा झंडा " इतिहास में प्रसिद्ध ही है ।

शिवाजी महाराज जब सामनगढ़ का क़िला बनवा रहे थे तब एक दिन क़िले के काम में लगे हुए सैकड़ों आदमियों को देख कर उनके मन में यह विचार आया कि मैं इतने मनुष्यों का पालन कर सकता हूँ, इसलिए मुझे धन्य है । इस विचार के साथ ही साथ शिवाजी के मन में एक प्रकार का अभिमान भी आगया । इतने ही में अकस्मात् समर्थ वहाँ जा पहुँचे । उन्हें देख कर शिवाजी ने दण्डवत्-प्रणाम किया और अकस्मात् पधारने का कारण पूछा । समर्थ ने कहा कि " तू श्रीमान् है । हजारों मनुष्यों का पालनकर्ता है; इसीलिए मैं तेरा कारख़ाना देखने आया हूँ । " शिवाजी ने कहा कि यह सब आप ही की

कृपा का फल है। इस प्रकार वार्तालाप करते हुए समर्थ की दृष्टि समीप पड़े हुए एक पत्थर की ओर गई। उस पत्थर को देख कर समर्थ ने कहा कि इस पत्थर को एक बेलदार से अभी तुड़वा डालो। शिवाजी की आज्ञा पाकर एक बेलदार उस पत्थर को तोड़ने लगा। समर्थ ने कहा इसमें बहुत धक्का न लगने पावे और दो टुकड़े बराबर करो। पत्थर के दो टुकड़े होते ही भीतर के पोले भाग से कुछ पानी और एक जीवित मेंढकी निकल पड़ी! यह चमत्कार देख कर सबको परम आश्चर्य मालूम हुआ। समर्थ ने कहा, "शिवबा! तुम्हारी योग्यता बहुत बड़ी है और तुम्हारी लीला अगाध है। देखो, ऐसी आश्चर्यकारक बात किससे हो सकती है?" शिवाजी ने कहा, "इसमें मेरा क्या है?" समर्थ ने कहा, "क्यों नहीं? तुम्हारे सिवा और कर्ता कौन है? तुम्हारे बिना जीवों का पालन और कौन कर सकता है?" शिवाजी महाराज अपने मन में समझ गये और बोले "मुझ पामर से कुछ नहीं हो सकता। इस दास को क्षमा कीजिए।" समर्थ ने कहा, "मैं क्षमा करने ही के लिए यहाँ इस समय आया हूँ। परन्तु इतना बतला देना आवश्यक है कि भैया, तुम उस सरकार (राम) के बड़े नौकर हो। तुम्हारे हाथ से वह औरों को देता है। इतनी बात से तुम्हें इस प्रकार का अभिमान कभी न करना चाहिए।" यह सुन कर शिवाजी महाराज को बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने, समर्थ के चरणों पर गिर कर, बार बार क्षमा माँगी। इसी शिक्षादायक चमत्कार के ऊपर एक चित्र तैयार किया गया है।

एक दिन सज्जनगढ़ में भोजन के बाद समर्थ शिष्य-मंडली के प्रश्नों का उत्तर देते हुए आसन पर बैठे थे। इतने में सहज उन्हें अपने शरीर पर एक चट्टा उठा हुआ देख पड़ा। उसे देख कर समर्थ को स्मरण हुआ कि हमारी माता ने, हमारे लिए, देवीजी को सोने के पुष्प अर्पण करने का संकल्प किया था। वह संकल्प पूरा नहीं हुआ। अतएव प्रतापगढ़ पर, जहाँ शिवाजी ने देवी की स्थापना की थी, समर्थ देवीजी को स्वर्णपुष्प अर्पण करने को गये, वहाँ समर्थ ने देवीजी की जो स्तुति की है उसमें उनके आत्मचरित का भी कुछ उल्लेख है। अन्तिम चार पद्यों में शिवाजी के सम्बन्ध में जो प्रार्थना की है वह ध्यान में रखने योग्य है। उसका भावार्थ यह है, "हे माता, मेरी सिर्फ़ एक प्रार्थना है, यदि वरदान देना है तो यही वरदान दे कि जिसका तू अभिमान रखती है और जो सर्वथैव तेरा है उस शिवाजी की रक्षा कर। उसको हमारे देखते ही देखते वैभव के शिखर पर चढ़ा दे। मैंने सुना है कि आज तक तूने अनेक दुष्टों का संहार किया है; परन्तु, अब इस समय उस बात की प्रतीति मुझे करा दे। सब देवगण हम लोगों को भूल से गये हैं। तू अब हम लोगों के सत्व की कितनी परीक्षा लेगी! हे देवी! तू अपने भक्तों का मनोरथ शीघ्र पूर्ण कर; मैं अत्यन्त आतुर हो गया हूँ; इसलिए क्षमा कर और मेरी इच्छा सफल कर।" धन्य है शिवाजी महाराज को! जिनकी ऐश्वर्यवृद्धि के लिए उनके सद्गुरु समर्थ देवी की इस तरह प्रार्थना करते हैं! इससे अधिक और कौन बात समर्थ और शिवाजी के पारस्परिक सम्बन्ध में

लिखी जाय? जिस महत्कार्य के लिए श्रीरामदासस्वामी ने अपना सारा पुण्य खर्च किया—अपना सारा सामर्थ्य लगाया—वह उनकी इच्छानुसार श्रीरामचन्द्रजी महाराज ने पूरा भी किया। यह बात सिंहावलोकन से प्रकट हो जायगी।

समकालीन उपदेशक।

श्रीरामदासस्वामी ने अपने जीवन-काल में स्वधर्म-स्थापना और समाजहित का जो अलौकिक कार्य महाराष्ट्र में किया उसमें उनके समय के अनेक उपदेशक गण, अर्थात् साधुसंत और कवि लोग, भी सहायक थे। उस समय महाराष्ट्र-समाज को अपनी उन्नति करने के लिए सनातनधर्म की व्यापकता, जातिबन्धन की अनिष्टता, कर्तव्यपरायणता, एकता आदि जिन गुणों की आवश्यकता थी उनकी शिक्षा अनेक साधु-संत और कविजन अपने बर्ताव और उपदेश-द्वारा दे रहे थे। पहले पहल सब धार्मिक ग्रन्थ संस्कृत-भाषा में थे। इससे विद्वान् और पण्डित लोगों के सिवा और कोई लाभ नहीं उठा सकते थे। परन्तु समर्थ-कालीन सब साधुसंत और कविजनों ने अपना उपदेश मराठी भाषा ही में करना आरम्भ किया। इस कारण यद्यपि उन लोगों को कुछ अहंकारी पुरुषों-द्वारा कष्ट सहना पड़ा तथापि उनके मातृ-भाषा-प्रेम से बहुजन-समाज का असाधारण हित हुआ। यूरप में जिस प्रकार लूथर ने बाइबल का अँगरेजी भाषा में अनुवाद करके धर्मक्रान्ति का बीज बोया, उसी प्रकार महाराष्ट्रीय उपदेशकों ने (विशेषतः रामदासस्वामी के समय के और उनके बाद के उपदेशकों ने) संस्कृत में छिपा हुआ सारा ज्ञान-भण्डार मराठी-द्वारा सर्वसाधारण लोगों को सुगम और सुलभ कर दिया। सन् १८९५ की पूना सार्वजनिक सभा की त्रैमासिक पत्रिका में इस विषय में यह लिखा है:—

The Saints and Prophets addressed the people both in speech and writing in their own vernacular and boldly opened the hitherto hidden and unknown treasures to all and sundry men and women, Brahmans and Shudras alike........These early Marathi writers knew that modern India, after Budhistic revolution, was less influenced by the Vedas and Shástras, than by the Ramayana and Mahabharat, the Bhagawat Puran and the Gita, and these latter works were translated and made accessible to all.

इस उपाय से महाराष्ट्र में धर्मजागृति होकर लोग अपने समाज और देश का हित सम्पादन करने में समर्थ हुए। इस प्रकार, समर्थ के समय में, जिन महात्माओं ने स्वधर्म, स्वजन और स्वभाषा की सेवा की है उनमें से कुछ लोगों का संक्षिप्त वृत्तान्त देना आवश्यक